कक्षा में पुस्तकों का कोना

शहनाज़ डीके

एक शिक्षिका के तौर पर जब मैंने एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना प्रारम्भ किया तो मुझे कक्षा में पढ़ाने में बहुत मज़ा आता था! मुझे हमेशा यही लगता था कि मेरा पढ़ाया गया पाठ सभी बच्चों को बहुत अच्छी तरह से समझ में आ जाता है क्योंकि परीक्षा में सभी बच्चे अच्छे अंक लाते थे। ऐसा शायद इसलिए था क्योंकि मैं एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाती थी जहाँ सारे बच्चे पढ़े-लिखे परिवारों से आते हैं। वहाँ कुछ साल काम करने के बाद मैं एक सरकारी अनुदान प्राप्त संस्था में आ गई जहाँ पर पढ़ने वाले बच्चे सभी तरह के परिवारों से आते थे।

इस संस्था में पढ़ाते हुए कुछ ही समय में मुझे लगा कि बच्चे या तो मेरी बात समझ नहीं पा रहे हैं या परीक्षा की तैयारी अच्छी तरह से नहीं कर रहे हैं। मैंने परीक्षा के पहले टेस्ट लेने भी शुरू कर दिए। पूरे कोर्स का रिवीज़न भी करवाया लेकिन परिणाम में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। कुछ साल ऐसे ही निकल गए परन्तु मैं पकड़ ही नहीं पा रही थी कि कमी कहाँ है।

धीरे-धीरे मेरी समझ में आने लगा कि यह बच्चे कक्षा पाँच में आ जाने पर भी पढ़ना नहीं सीख पाते हैं और इसलिए पढ़ी गई किसी भी बात को न तो समझ पाते हैं और न ही याद रख पाते हैं। अब मैं पढ़ने के कौशल में कमज़ोर बच्चों को रोज़ एक पेज पढ़ने को देती अगले दिन फिर उनसे पढ़वाती। परन्तु हर नए पेज पर उनकी गति फिर धीमी पड़ जाती। पढ़े गए वाक्य का अर्थ पूछने पर बच्चे कुछ नहीं बता पाते।

इस तरह कार्य करते हुए मुझे यह तो समझ आने लगा था कि बच्चों को एक-एक पेज पढ़ाने का कोई फ़ायदा नहीं हो रहा है क्योंकि वे उसे बोझ समझकर ज़बरदस्ती पढ़ते हैं! यदि उनके पास पढ़ने के लिए कुछ मज़ेदार हो और उसमें उनकी रुचि हो तो वे बिना कहे अपने-आप पढ़ेंगे। उनसे पूछने पर पता चला कि उनके पास तो केवल उनकी पाठ्यपुस्तकें हैं, किसी अन्य प्रकार की किताबें उनके घर पर नहीं हैं। मैंने लाइब्रेरी में जाकर बच्चों के पढ़ने के लिए किताबें लानी चाही तो जवाब मिला कि छोटे बच्चे किताबें फाड़ देते हैं इसलिए हम नहीं दे सकते। मैं अपने घर से कुछ पुरानी किताबें स्कूल ले गई और बच्चों को कहानियाँ पढ़ने के लिए दीं। बच्चे उनको मज़े से पढ़ने लगे क्योंकि उन्होंने पहले कभी ऐसी किताबें नहीं पढ़ी थीं। जिन्हें पढ़ना नहीं आता था वे भी किताबों को उलट-पुलटकर देखने लगे। मेरे दिमाग़ में विचार आया कि क्यों न पुस्तकालय या किताबों का कोना कक्षा में ही चलाया जाए।

स्कूल की लाइब्रेरी की पुरानी किताबें जिन्हें रद्दी में बेचा जाना था, मैंने ले लीं। इन किताबों के फटने पर इन्हें वापस जमा नहीं कराना था। *नन्दन, चंपक, बालहंस* आदि छोटी-छोटी कहानियों वाली पत्रिकाएँ मेरे कक्षा-पुस्तकालय की सबसे पहली किताबें थीं। इन्हें कक्षा की अलमारी में रख दिया और बच्चों को पढ़ने की खुली छूट दे दी। उनसे यह शर्त रखी कि वे अपना कक्षा-कार्य करने के बाद ख़ाली समय में कभी भी उन पत्रिकाओं को पढ़ सकते हैं। शुरुआत में लड़ाई-झगड़े हुए, पत्रिकाएँ फट गईं। धीरे-धीरे कक्षा में ही बच्चे व्यवस्थित रूप से पढ़ने लगे। अब पत्रिकाएँ कम होने लगीं यानी उन्हें पढ़ने के लिए घर ले जाया जाने लगा। अब मुझे यह देखना ज़रूरी हो गया कि कौन पढ़ रहा है, किसकी रुचि बढ़ती जा रही है और जो बच्चे अभी ठीक से नहीं पढ़ पाते हैं वे क्या कर रहे हैं। कक्षा में पत्रिकाओं को आए दो-तीन महीने हो गए थे परन्तु कुछ बच्चे अभी भी केवल चित्र ही देख रहे थे! लेकिन मुझे यह देखकर अच्छा लगा कि कुछ ही समय में वे धीरे-धीरे शब्दों को पहचानने और पढ़ने लगे। यानी मेरा सोचना सही था कि बच्चों को कुछ रुचिकर और नया पढ़ने को मिले तो वे परीक्षा की घबराहट से निकलकर पढ़ने का मज़ा लेंगे।

साल भर तक इस तरह कक्षा में ही उन्हें पढ़ने के लिए पूरी छूट मिलती रही और बच्चे अपने साथियों की मदद से, अपनी ग़लतियों को स्वयं सुधारते हुए धीरे-धीरे पढ़ने लगे। उनकी पढ़ने की गति जब ठीक हो गई तो उनकी समझ को जाँचने के लिए पूरी कक्षा के बच्चों का एक क्लोज़ टेस्ट और गणित के इबारती सवालों का टेस्ट लिया गया। दोनों ही टेस्ट का उद्देश्य यह जाँचना था कि क्या बच्चे समझ के साथ पढ़ पाते हैं और उस समझ के आधार पर प्रश्नों के उत्तर दे पाते हैं या नहीं। इन दोनों टेस्ट के परिणाम काफ़ी सकारात्मक थे! इससे यह स्पष्ट था कि जो बच्चे अपनी पाठ्यपुस्तकों से चार-पाँच सालों में भी पढ़ना नहीं सीख सके थे, वे बच्चे अपनी पसन्द की पुस्तकों से, स्वयं प्रयास करते हुए साल भर में ही पढ़ना सीखने में सफल हुए हैं और पढ़ी गई बात उनकी समझ में भी आती है।

इस प्रयोग की सफलता के चलते विद्यालय की सभी कक्षाओं में पुस्तकों का कोना चलाया जाने लगा। कक्षा के स्तर एवं

विद्यार्थियों की रुचि के अनुसार कक्षाध्यापक पुस्तकों का चयन करते और उन्हें पुस्तकालय से इश्यू करवाकर अपनी कक्षा में रख देते जिससे बच्चे ख़ाली समय मिलने पर उनका भरपूर उपयोग करते थे। इन पुस्तकों को समय-समय पर बदला जाता था जिससे बच्चों को कई प्रकार की पुस्तकों को पढ़ने और विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित बातों को जानने का मौक़ा मिलता। बाद में धीरे-धीरे बच्चों ने विभिन्न कार्यक्रमों और प्रतियोगिता के लिए पुस्तकालय का उपयोग करना शुरू किया जिससे किताबों की ओर उनका रुझान बढ़ा और इसका प्रभाव उनके परीक्षा परिणामों पर भी दिखाई देने लगा।

कुछ सालों बाद मैं सरकारी विद्यालय में चली गई। वहाँ पर कक्षा 5 से 8 तक के बच्चों की किताब पढ़ने की स्थिति और भी ख़राब थी। वहाँ भी मैंने पुस्तकालय प्रभारी से बात करके और कई प्रकार की समस्याओं से निपटते हुए अपने स्तर पर बच्चों को पुस्तकें उपलब्ध करवाना और उनका पढ़ना-पढ़ाना जारी रखा।

पुस्तकों का कोना बनाने का उद्देश्य है बच्चों को दुनिया के बारे में सीखने में मदद करना और पाठ्यपुस्तकों एवं कक्षा के बाहर की दुनिया के अपने ज्ञान का विस्तार करना! अन्य पुस्तकों को पढ़ने से उन्हें यह एहसास होता है कि वे अपने आस-पास की दुनिया को समझने के लिए, जब चाहें इस कौशल का इस्तेमाल कर सकते हैं।

शहनाज़ डीके पिछले 25 वर्षों से शिक्षण कर रहीं हैं एवं वर्तमान में वे शासकीय कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय गोदुन्दा, उदयपुर में कक्षा 6-8 में गणित एवं विज्ञान विषय पढ़ाती हैं। वे बच्चों की सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को समझने में रुचि रखती हैं। उनसे *shehnazakirdk@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।